साहित्य में 'है' और 'नहीं है' तथा सार्वभौमिकता के विमर्श

कन्हैया त्रिपाठी

संक्षेप:

साहित्य में सृजन की संवेदना मनुष्य के आध्यात्मिक उत्कर्ष की गाथा है। सृजन बहुत बड़े पैमाने पर हुए हैं। कलाओं और साहित्य के सृजनात्मक इतिहास इस बात के प्रमाण हैं कि मनुष्य सदैव रचनाधर्मी रहा और उसने अपने समाज की बेहतरी के लिए विचारों का बड़े पैमाने पर उत्पादन किया। इस प्रपत्र में इस बात को समझने की कोशिश की गई है कि सृजन के नए विमर्श किस दिशा में अपनी धार को प्रखर बनाए हुए हैं। खासकर तब जब लेखक के मृत्यु और साहित्य के अंत की बात की जा रही है। साहित्य के नवोन्मेष और साहित्य की संवेदना में साहित्यकार वैश्विक स्तर पर क्या सोचते-विचारते रहे हैं। इसमें यह भी स्पष्ट करने की विशेष कोशिश की गई है कि मानवीयता को समर्पित साहित्य क्यों कालजयी हो जाते हैं और इसमें उठाए गए सवाल कैसे अपने सवाल में भी सभ्यता निर्माण करते हैं। साहित्य में है और नहीं है के साथ सार्वभौमिकता के साहित्य की संवेदना अपनी मौलिकताको बचाए हुए हैं।

बीज-शब्द:सृजन, साहित्य का उत्पादन, सभ्यता, 'है', 'नहीं है', सार्वभौमिकता

यह हमारी मनुष्य सभ्यता संवाद और सृजन पर पल्लवित पुष्पित हुई है। सृजन में अनेकों विधाओं की उपस्थिति इस बात का संकेत है, कि हमारे सृजनकर्ता निरंतर अपनी अभिव्यक्ति में मौलिकता और अभिनव परिवर्तन लाते रहे हैं, इसलिए अब साहित्य का कैनवास अपनी संवेदना में भी परिष्कृत हो चुका है। भारत में ही नहीं यह परिवर्तन विश्वव्यापी है। हमारी सृजन की प्रक्रिया में सतत-विकास-सस्टेनेबिलिटी के लिए वकालत की आज़ आवश्यकता नहीं है। साहित्य एक ऐसी रचना-प्रक्रिया की अभिव्यक्ति है जिसमें उसके दीर्घायु की कामना की आवश्यकता होती ही नहीं है। वह तो अपने नैरन्तर्य में असीम बहाव लेकर गतिशील होती है। सभ्यता की गतिशीलता को पकड़कर रचे बुने जा रहे साहित्य दुनिया भर में पढ़े भी जा रहे हैं। हाँ, साहित्य की धार यदि पैनी हो, तो उसके पाठक अधिक होते हैं, और साहित्य में संवेदना भी हो, तो उस साहित्य से जुड़ाव भी पाठकों का निरंतर बना रहता है।इसीलिए दुनिया की कालजयी-क्लासिक कृतियाँ अपनी संवेदना के साथ निरंतर बदलती पीढ़ी को मौलिक सोच प्रदान करने में सफल रही हैं। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा है, 'समय-समय पर इस दोष-युक्त संसार में ऐसी महान आत्माएं अवतरित होती रहती हैं, जिनमेंअपूर्व प्रतिभा होती है, जिनमें यह जानने की शक्ति होती है, कि हम क्या गलती करते हैं, जिनमें अपनी पीढ़ी के लोगों को रास्ता दिखाने की ताकत होती है, विरोधी शक्तियों के सामना करने का साहस होता है, तथा देश को विजय एवं सफलता की ओर ले जा सकने में आत्मविश्वास होता है"[1] रचनाकार भी इन्हीं महान-परंपरा के वाहक हैं। वे अपने पीढ़ियों को और आने वाली पीढ़ियों को अपनी गहन-दार्शनिक संवेदना से मार्ग प्रशस्त करते रहे हैं। हमारी कालजयी कृतियाँ उनकी उस संवेदना से निकली स्वतःस्फूर्त चेतना की प्रमाण हैं।

साहित्य में नवोन्मेष की संभावना

साहित्य का रचना संसार विपुल हुआ है। एक तरफ 'लेखक के अंत'[2] की बात हो रही है तो दूसरी ओर 'साहित्य के संघर्ष की संस्कृति' में बढ़ोतरी हो रही है, जिससे 'सभ्यता की संस्कृति' के अंत, जलवायु परवर्तन और युद्धों के बढ़ोतरी साहित्य के विमर्श के केंद्र में लाने की कोशिश करना आवश्यक समझा जा रहा है। साहित्य की अनेक विधाओं में साहित्य के सौन्दर्यबोध को 'प्रतिरोध की संस्कृति' के साथ जोड़कर देखा जा रहा है। इसमें नवाचार और अभिव्यक्ति की नई विधाओं के सृजन की परम्परा खोजी जा रही है। 'यदि यूनेस्को के दस्तावेज़ों का अवलोकन करें तो यह भी ज्ञात होता है कि 'कविता की

मौखिक परम्परा' की ओर पुनः ध्यान देने पर बल दिया गया है।'[3] 'लेखक के अंत' पर अपने विश्लेषण में बार्थेस इस ओर संकेत करते हैं कि लेखक अपने पाठ के साथ-साथ पैदा होता है...साहित्य में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं होता है, बल्कि जो लिखता है वही होता है...लेखन के भविष्य को अनवरत रखने के लिए हमें इस मिथ को तोड़ना होगा। न कि पाठक का जन्म 'लेखक की मृत्यु' पर होना चाहिए।[4] साहित्य में लेखक की अनेकों चुनौतियाँ होती हैं। नवोन्मेष में और ज्यादा। रॉबर्ट कूवर के आलेख "द एंड ऑफ़ लिटरेचर" पढ़ें तो उसका मत है कि एक सुव्यवस्थित सभी वाक्य, कविता की एक पंक्ति को गढ़ने में हफ़्तों लग सकते हैं। और उन पंक्तियों को पढ़ने और उसे पूरी तरह समझने में उतना ही समय लग सकता है।[5]

यह पाठक गंभीरता और लेखक की संवेदना से जुड़ा सवाल है। इसके लिए साहित्य निष्ठा की मांग करते हैं। साहित्य रचना इसलिए एक बात है, और उसको उसी रूप में ग्रहण करना दूसरी बात है। रॉबर्ट कूवर भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि एक शिल्प के रूप में लिखने के लिए धैर्य एवं अनुशासन की आवश्यकता होती है... छोटी कविताओं, 'साहित्यिक रूपक' और 'बच्चों की कहानियों' का मूल्यांकन उनकी 'कलात्मकता' के लिए किया जाता है।[6] शिल्प और पाठक की दृष्टि से मूल्यांकन साहित्य का होता रहा है। किन्तु नवोन्मेषी कवितायेँ, कहानियां, उपन्यास या नाटक की आधारभूमि क्या आज का लेखक उसी रूप में बनाकर रचना कर रहा है, सवाल यह भी है। कलाओं के लिए भी यह चीजें उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं। फिल्म और लघु-सिनेमा या वेब-सीरीज में सोच का स्तर, और एक विधा में रची जाने वाली पुस्तक को उठाकर देखा जाए, तो नवोन्मेष का अंतर स्पष्ट हो जाता है। किन्तु साहित्य इससे कमजोर नहीं होता। लेखक को यह सोचने की आवश्यकता ज़रूर है कि हमारे चिंतन का दायरा कैसे अलग हो सकता है।

साहित्य में मनुष्यता की आधारभूमि एवं तात्कालिकता

साहित्यकारों द्वारा 'मानवता केन्द्रित' रचे गए साहित्य क्यों लोगों के मस्तिष्क पर ज्यादा समय तक असर करते हैं, कभी इस पर विचार करने पर उनकी सोच की नवोन्मेषी पद्धति स्वतः स्पष्ट होने लगती है। कालजयी कृतियों की यही विशेषता रही है कि वे मनुष्यता और प्रकृति की संवेदना को प्रस्तुत करती हैं, और ऐसी सीख देने का यत्न करती हैं जो ज्ञान-मीमांसीय विभिन्न विमर्श में हमेशा अपनी नई दृष्टि के साथ उपस्थिति बनाती हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा है-साहित्य का विचार करते समय दो चीजें देखनी होती है। पहली, विश्व पर साहित्यकार के हृदय का अधिकार कितना है, दूसरी, उसका कितना अंश स्थायी आकार में व्यक्त हुआ है। यह दोनों में सब समय सामंजस्य नहीं रहता। जहाँ रहता है,

वहीं सोने में सुहागा है। कवि की कल्पना-सचेतन हृदय जितना ही विश्वव्यापी होता है, उतनी ही उसकी रचना की गहरे से हमारी परितृप्ति बढ़ती है। मानव-विश्व की सीमा फैलकर हमारा चिरंतन विहार-क्षेत्र उतनी ही विपुलता प्राप्त करता है। लेकिन रचना शक्ति की निपुणता भी साहित्य में अत्यंत मूल्यवान है।[7] साहित्य में मनुष्यता की समझ साहित्य के सौन्दर्यबोध की आधारभूमि हैं किन्तु उसकी व्यापकता तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सामान व्यापक और अभीष्ट भी होनी आवश्यक है।

कविता, क़िस्सागोई, और लम्बी कथाओं की रचना हो या किसी उपन्यास के शिल्प की बुनावट इसमें वैश्विक होने की छटपटाहट वास्तव में रचना में एक चुनौती होती है। लेखक की चिंतन की समष्टिगत व्याख्या मौलिकरूप से सत्यान्वेषी हो और लोक-कल्याणकारी भी हो, यह तो रचनाकार की अपनी चिंतन की प्रक्रिया है। श्रीमदभगवद्गीता और तुलसी के रामचरितमानस का उद्धरण यहाँ समीचीन लगता है। दुनिया के विभिन्न अंचल में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग की शिक्षाएं श्रीमदभगवद्गीता के माध्यम से दी गई हैं, किन्तु यह विश्व के लिए साहित्य का वरदान भी है, और इसकी सार्वभौमिकता स्वीकार्य है। साहित्य में विभिन्न सिद्धांतों की व्युत्पत्ति एवं उनकी स्वीकार्यता उनके सार्वभौमिकता के कारण हुई हैं। साहित्य के मानविकी से लेकर भूमंडलीकरण तक के सिद्धांत को लेखक, पाठक और आलोचकों की आँख से जाना और परखा जाता रहा है। सैद्धांतिकी और साहित्य की आत्मा को भी मूल्यांकित करने में कई तरीके के द्वैध तथा मतभेद रहे हैं। लेकिन साहित्य की अवरसंरचना की दृष्टि से यह सदैव देखने-परखने की कोशिश होती रही है जिसकी ओर रवीन्द्रनाथ ठाकुर संकेत करते हैं। टॉलस्टॉय के 'वार एंड पीस' या 'द किंगडम ऑफ़ गॉड विदिन यू' या रस्किन की 'अन टू दिस लास्ट' पढ़ें तो रचना प्रक्रिया और उसकी व्यापकता स्वतः समझ आती है। एक लेखक के भीतर रचना से पहले की तैयारी और समझ इन रचनाओं में अंतर्गुन्फित होते हैं।

वर्जीनिया वुल्फ़, डेनियल दिफॉय का रॉबिन्स क्रूसो, और दूसरे मानवाधिकारवादी साहित्य को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि वे मनुष्यता की सातत्य-सभ्यता के लिए आग्रही हैं। अच्युतानंद मिश्र की एक रचना है-बच्चे धर्मयुद्ध लड़ रहे हैं। यह कविता उन्होंने अमेरिकी युद्धों में मारे गए, यतीम और जिहादी बना दिए गए असंख्य बच्चों के नाम समर्पित किया है। उसकी कुछ पंक्तियाँ-नन्हें हाथ/जिन्हें खिलौनों से उलझना था/खेतों में बम के टुकड़े चुन रहे हैं.... अब थोड़े से बच्चे/बचे रह गए हैं/फिर भी युद्ध लड़ा जाएगा/यह धर्मयुद्ध है/बच्चे धर्म की तरफ़ हैं/और वे युद्ध की तरफ़।[8] कविता अपने बुनावट में जिन दृश्यों

और रूपकों से स्वयं को शानदार कहने वाली दुनिया को चुनौती दे रही है उस शिल्प को समझकर रचना और रचना-प्रक्रिया की धार को देखा जा सकता है।

रचनाकार की दृष्टि की परख तो एक आलोचक करता है किन्तु कविता की भवितव्यता भी इससे ओझल होकर कुछ अन्य अर्थ नहीं देती। कविता का, कलावस्तु का गौरव, उसकी 'भव्यता' है। उस रासायनिक क्रिया की तीव्रता जिसके द्वारा ये विभिन्न भाव एक होते हैं, और चमत्कार उत्पन्न होते हैं।[9] सौन्दर्य के तत्व बुद्धि पर आधारित हैं, और सुन्दर का आस्वादन बुद्धि का व्यापर है। इससे और परिणाम निकलते हैं। बुद्धि अनुभव के सहारे चलती है-अनुभव व्यक्तिगत, समाजगत, जातिगत और युग-युगांतर संचित, और अनुभव कोई जड़ पिंड नहीं है, वह निरंतर विकासशील है....बुद्धि और जिसपर बुद्धि आधारित है वह निरंतर विकाशसील और संस्कारशील है। निरंतर सूक्ष्मतर होती हुई संवेदना एकांगी भी हो सकती है, पर जहाँ सर्जनात्मक शक्ति है, वहां एकांगिता की संभावना कम है और पुष्ट सौन्दर्य-बोध के साथ पुष्ट नैतिक बोध भी होता है। जिस प्रकार कृतिकार सुंदर का स्रष्टा होकर असुंदर के सायास परित्याग द्वारा सुंदर की उपलब्धि की अपेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार वह द्रष्टा होकर सायास अनैतिक के विरोध द्वारा नैतिक नहीं हो पाता, उसकी परिपुष्टि संवेदना सहज भाव से दोनों को पाती है-देती है।[10]

रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसीलिए रचनाकार को अपनी ख़ास परिधि में अपनायी गई रचना-प्रक्रिया को विस्तारित करने की बात करते हैं। अब जब 'साहित्य के अंत' की बात हो रही है तो उसका खंडन भी हमारे रचनाकार कर रहे हैं, और करते रहे हैं। निर्मल वर्मा का एक निबंध है -'आदि और अंत' इस निबंध में निर्मल वर्मा ने पश्चिम में छिड़े 'लेखक के अंत' और 'साहित्य के अंत' पर बहुत पहले अपना विचार प्रकट किया है। उन्होंने लिखा- आज अक्सर इतिहास के अंतकी, आइडियोलॉजी के अंत की, यहाँ तक कि कला के अंत की भविष्यवाणियाँ की जाती हैं। मुझे नहीं मालूम, उनमें कितनी सच्चाई है, किंतु मुझे लगता है, ये सब अंत अगर सच है, तो 'व्यक्ति' के अवसान से जुड़े हैं, जिसने इतिहास के आतंक और आइडियोलॉजी के ज्वर को अपनी नंगी त्वचा पर झेला था, उसके अद्वितीय असाधारण अनुभव को अपनी अवसादपूर्ण कला में अभिव्यक्त किया था।यूरोपीय साहित्य एक अर्थ में इसी 'संपूर्णताबोध' के विस्मृत हो जाने का विलाप गीत माना जा सकता है। किंतु जो विस्मृत, वह मृत नहीं हो जाता. एक बार जो अनुभव हो चुका है, वह हमेशा बना रहता है.जीवन में, नहीं तो स्मृति में, स्वप्न में, अवचेतन में। यदि इतिहास उसे अपने छद्म उजाले से निष्कासित कर देता है तो वह आत्मा के अंधेरे में- जो असली है- शरण पा लेता है।[11] इस सन्दर्भ में निर्मल वर्मा लिखते हैं कि काफ्का ने कहा था, हमारे सबसे मधुर गीत

हमारे भीतर निचले, दबे, गुह्यतम नरक से बाहर आते हैं- एक ऐसी विस्थापित आत्मा की पुकार, जो हमें बीथोवन के अंतिम क्वाट्रेट्स में रिल्के और होल्डरलिन की कविताओं में टामस-मान के अभिशप्त कलाकार-नायकों की गाथाओं में सुनाई देती है। हर युग अपने पद चिन्ह, दूसरे युग की आत्मा में लहूलुहान खरोंचों की तरह छोड़ जाता है।[12] निर्मल वर्मा ने एक अन्य निबंध 'पूर्वऔर पश्चिम'में लिखा है। इस दृष्टि से साहित्य अन्य समाजशास्त्रीय अनुशासनों से थोड़ा अलग हो जाता है....वह मनुष्य के सरोकारों और भावावेगों से संबंधित होता हुआ भी मनुष्य की एकाश्मिक छवि प्रस्तुत नहीं करता। हर साहित्यिक कृति अपना एक निजी मनुष्य रचती है, जो दुनिया में चलते-फिरते मनुष्यों की तरह दिखता है, किंतु उसके स्वभाव में एक अजीब-सी ऐंठ या अनोखापन, अंग्रेजी शब्द इस्तेमाल करें, तो एक तरह की 'आइडियोसिंक्री' होती है, जो उसे सामान्य 'मनुष्य' से 'व्यक्ति' में परिणत करती है।[13] न मरने वाले साहित्यऔर न मरने वाले लेखकों की चेतना और उसकी व्याप्ति को निर्मल वर्मा ने सार्वभौमिक विरासत के रूप में परिभाषित किया है। साहित्य के शिवत्व या सुंदरतम की संकल्पना भी किसी के अवसान को ख़ारिज करती है. श्रीकांत वर्मा की एक कविता है.'**कलिंग**- उसे पढ़ें- केवल अशोक लौट रहा है/और सब/कलिंग का पता पूछ रहे हैं/केवल अशोक सिर झुकाए हुए है/और सब/विजेता की तरह चल रहे हैं/केवल अशोक के कानों में चीखगूँज रही है.../और सब/हँसते-हँसते दोहरे हो रहे हैं/केवल अशोक ने शस्त्र रख दिए हैं/केवल अशोक..लड़ रहा था।[14]

ऐसी अनेकों रचनाएँ हैं जिसकी यथार्थवादी अभिव्यक्ति रचनाकार को खड़ा करती है उसके मृत्यु का सवाल ही नहीं है। मनुष्यता के लिए लिखी गई और उसमें अशोक को ही बिंब के रूप में स्थापित करने वाली रचना वस्तुतः इतिहासबोध और- इतिहास के बहुतेरे गढ़े गए गढ़े गए मिथ को एक सिरे से नकार देती है। हन्ना अरेंट ने एक महत्त्वपूर्ण बात लिखी है कि हर बार जब आप कुछ लिखते हैं और जब आप दुनिया में भेजते हैं और जब यह सार्वजानिक कर देते हैं, तो जाहिर सी बात है कि उसे अपने हिसाब से व्याख्या या अर्थ करने के लिए लोग स्वतंत्र है। अब जो होगा वह होगा, इसके लिए हाथ पकड़ने की कोशिश नहीं करना चाहिए। इसके बजाय आपको यह सीखने की कोशिश करनी चाहिए कि दूसरे लोग इसके साथ क्या करते हैं। यह साहित्य के लिए भी लागू होता है। यह किसी भी रचनाके लिए लागू होता है। आजप्रायः साहित्य के अध्येता और रचनाकार अपने होने के साथ अपनी प्रसिद्धि की इच्छा रखते हैं किन्तु जिन्होंने क्लॉसिक रचा, वे लिखकर उद्दात्तभाव से समाज को समर्पित कर दिए-साहित्य में मनुष्यता, प्रकृति और मूल्यों की रचना करने वाले नितांत एकांतिक होकर भी प्रशंसा की चिंता नहीं

करते।ऐसी रचना सार्वभौमिक प्रतिष्ठा स्वयमेव प्राप्त कर लेती हैं। साहित्य की अनेकों विधाओं में लिखी जा रही रचना भी अपनी उसी उद्दात्तता के साथ पाठकों के बीच जाती है तो उसकी उम्र की कोई सीमा नहीं होती या फिर उसके मृत्यु की घोषणा कोई नहीं कर पाता। यद्यपि साहित्य में रचनाकार की उपस्थिति तो उसकी रचना की उपस्थिति के साथ बनी रहेगी।

साहित्य में सार्वभौमिकता के सवाल

एक लेखक हुए स्टीफ़न स्वाइग[15], उनके रचना और प्रतिबद्धता की कहानियां साहित्य-जगत में आम है. इसके बारे में ओमा शर्मा ने लिखा है कि (स्टीफ़न स्वाइग ने अपनी आत्महत्या के कुछ दिन पूर्व अपनी आत्मकथा लिखी) आत्मकथा में लेखक एक सूत्राधार की भूमिका में है, कभी तो एक नादान प्रशिक्षार्थी की भूमिका में भी, और उसी भूमिका में वह कभी अपने दिग्गज समकालीनों रिल्के, रोदां, गोर्की, हर्जल, रोमां रोलां, वेरहारन, रिचर्ड स्ट्रॉस, हाफमंसथाल, शॉ, वेल्स और फ्रायड की रचनात्मकता के बरक्स उनकी निजी खूबियों की बेदाग तस्वीर पेश करता है, तो कभी रूसी, ब्रितानी, ऑस्ट्रियाई या अमरीकी समाज की बुनियादें उघाड़ता है। अपने समय और समाज की पड़ताल करते हुए कोई रचना कैसे सार्वभौमिक और सर्वकालिक हो सकती है, यह इस आत्मकथा को पढक़र ही समझा जा सकता है।[16] रचना की सार्वभौमिकता तो उसकी अपनी जीवंत रचना-शिल्प से ही सम्भव होती है। साहित्य में संरचनावाद और उत्तर-संरचनावाद के विमर्श हों या विखंडनवाद के प्रश्न साहित्य के सार्वभौमिकता और सर्वकालिकता के मौलिक प्रश्न तात्विक होते हैं जो सत्य, सहिष्णुता, प्रेम, करुणा और समावेशी-संस्कृति के साहित्य-सर्जना को स्थापित करते हैं। क्योंकि प्रेम, घृणा, मृत्यु, जीवन और विश्वास के विषय, हमारी कुछ सबसे बुनियादी भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को स्पर्श करते हुए जो साहित्य रचे-बुने गए हैं या जीवन के विभिन्न तात्विक व्याख्याओं को जहाँ निरूपित किया गया उसमें हैं। ऐसी रचनाएँ या कृतियाँ अपनी सार्वभौमिकता को प्राप्त कर लेती हैं।

साहित्य की सार्वभौमिकता के भार आलोचक नहीं निर्धारित करते। किन्तु साहित्य में आलोचना की एक व्यापक परम्परा है भारत में भी और दुनिया के सभी देशों में। आलोचक अपनी दृष्टि, परख और सम्प्रेषण से साहित्य को ख़ारिज करते रहे हैं किंतु उन आलोचनाओं के ज़रिये साहित्य के साथ जो आमराय बनायी गई, क्या वह सब सही थीं? ऐसा लगता है कि इसको सही से जानने के लिए डेनियल मेंडलशन के आलेख 'अ क्रिटिक्स मेनिफेस्टो' पढ़ना चाहिए। उसका मत है कि गंभीर आलोचक एक उन्मादी विवादवादी नहीं हो सकता....गंभीर आलोचक अंततः अपने पाठक को जितना प्यार करता है

उससे अधिक अपने विषय से प्यार करता है।[17] वह कहता है कि एक विचार जो आपको इस सवाल पर लाता है कि पहली बार में क्या समीक्षा की जानी चाहिए।[18] आलोचकों की अपनी दुनिया है और आलोचक अपनी पीठ ठोकते हुए ऐसा कहते हैं कि इस कृति को एक सिरे से ख़ारिज किया और किया जाना चाहिए। किन्तु यह तो किसी आलोचक की भूल है। डैनियल को पढ़ते हुए यह पता चलता है कि यह किसी भी आलोचक की सही परिभाषा और पहचान नहीं है जो ऐसा करता है। डैनियल इस नतीजे पर पहुँचते हैं- 'और इसलिए तथ्य यह है कि (लोकप्रिय कहावत) हर कोई आलोचक नहीं होता है।[19] उसका मानना है कि हां, हम सभी इन दिनों नकारात्मक समीक्षा के प्रति थोड़े संवेदनशील हैं, लेकिन अगर आप किसी पर निर्णय करने जा रहे हैं, तो उसे आलोचक नहीं होना चाहिए कुछ और होना चाहिए।[20] उन्होंने अपने अध्यनन व तर्क को ड्वाइट गार्नर द्वारा की गई टिपण्णी से पुष्टि किया है। यथा-ड्वाइट गार्नर द्वारा अपने हालिया टाइम्स लेख में नकारात्मक आलोचना के पक्ष में उद्धृत एक टुकड़ा। एगर्स ने आगे कहा, 'जब तक आप एक किताब नहीं लिख लेते, तब तक एक किताब को खारिज न करें, और एक फिल्म को तब तक खारिज न करें जब तक कि आप एक फिल्म नहीं बना लेते।[21] यद्यपि ऐसा होता नहीं है, कि किसी विधा में प्रवेश करने वाला व्यक्ति उस विधा को परखने के लिए समय दे, नकारात्मकता या सकारात्मकता को व्यक्त करने के लिए पहले अपने उस प्रक्रिया से गुजरे, जिसके बारे में वह प्रतिक्रिया देने जा रहा है, लेकिन फिर भी डैनियल की अपनी एक दृष्टि है और उसे साहित्य कि सृजनात्मकता से अलग करके नहीं देखा जा सकता।

समग्रता में देखा जाए तो साहित्य की रचना प्रक्रिया में 'है', 'नहीं है' और सार्वभौमिकता के सवालों के विमर्श इसलिए भी हैं क्योंकि विभिन्न प्रकार के गढ़े जा रहे 'मिथ' साहित्य और साहित्यकारों को सृजनकर्ताओं को चिंतित कर देते हैं। उत्तर-सत्य की बहस के बाद ऐसा अधिक हुआ हो रहा है। साहित्य सर्जकों के लिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर की चंद पंक्तियाँ इस प्रकार है- गाओ तुम आकाशचारी पंछियों/पुण्य विश्व के समाज में/पूर्व और पश्चिम, सब का भ्रातृ-मिलन/द्विधाहीन मैत्री का पूनीत मंत्र।[22] यदि साहित्य का मौलिक स्वर मानव धर्म, मैत्री-भावना, विश्वात्म-भाव और प्रेम के लिए आग्रही हो जाएँ, तो इस जलधारा से निकली धुन विश्व के कल्याण के लिए ही होगी और ऐसे साहित्य हर अनिष्ट से हमारी पीढ़ी को बचाने में सहयोगी सिद्ध होंगे।

सन्दर्भ:

1. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, स्वतंत्रता एवं संस्कृति, अनु. विश्वम्भरनाथ त्रिपाठी, अपर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, 1955, पृष्ठ-122
2. रोलैंड बार्थेस, द डेथ ऑफ़ ऑथर, अनु. एस. हीथ, साउथहैम्पटन सोलेंट यूनिवर्सिटी, लन्दन, पृष्ठ 142-148
3. https://www.un.org/en/observances/world-poetry-day
4. रोलैंड बार्थेस, द डेथ ऑफ़ ऑथर, अनु. एस. हीथ, साउथ-हैम्पटन सोलेंट यूनिवर्सिटी, लन्दन, पृष्ठ 148
5. रॉबर्ट कूवर, द एंड ऑफ़ लिटरेचर, अमेरिकन स्कॉलर, 4 सितम्बर, 2018
6. वही
7. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्र रचना संचयन, संकलन. असित कुमार बंदोपाध्याय, साहित्य अकादमी नई दिल्ली, 1987, पृष्ठ- 652
8. अच्युतानंद मिश्र, बच्चे धर्मयुद्ध लड़ रहे हैं, (https://hindwi.org/kavita/war/achyutanand-mishra-kavita-7)
9. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, कला का स्वभाव और उद्देश्य, वैचारिक निबंध भाग-1, सम्पादक: कन्हैयालाल नंदन, (https://hindisamay.com/Ajneya-sanchayan/Ajneya-essays-1.htm#top)
10. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, सौंदर्य-बोध और शिवत्व-बोध, वैचारिक निबंध भाग-1, सम्पादक: कन्हैयालाल नंदन, (https://hindisamay.com/Ajneya-sanchayan/Ajneya-essays-1.htm#top)
11. निर्मल वर्मा, आदि और अंत, http://www.hindisamay.com/content/6767/1/निर्मल-वर्मा-निबंध-आदि-और-अंत.cspx
12. वही
13. निर्मल वर्मा, पूर्व और पश्चिम, http://www.hindisamay.com/content/6767/1/निर्मल-वर्मा-निबंध-आदि-और-अंत.cspx
14. मार्गरेट कैनवन, इंट्रोडक्शन, हन्ना अरेंट ,द ह्युमन कंडीशन, द यूनिवर्सिटी ऑफ़ शिकागो प्रेस, शिकागो, लन्दन. 1985, पृष्ठ-एक्स एक्स (20)
15. बहुत कच्ची उम्र में कविताओं से अपने लेखकीय जीवन की धमाकेदार शुरूआत करने वाले इस लेखक का विश्व साहित्य में विपुल और बहुआयामी अवदान है नाटक, कहानी और उपन्यास लेखन के अलावा जीवनी

लेखन के क्षेत्रों में स्वाइग की पहचान अद्वितीय है. फ्रायड, रोमां रोलां, टॉल्सटॉय, दोस्तोयेव्स्की, डिकन्स और बाल्जाक जैसे सर्वकालिक लेखकों-विचारकों पर लिखी उसकी आलोचनात्मक जीवनियाँ सतत बारीक मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अलावा दरअसल जीवनी लेखन का विधागत विस्तार हैं. स्टीफ़न स्वाइग एक यहूदी था और पैदाइश से एक ऐसे देश, ऑस्ट्रिया, का नागरिक जो लम्बे अरसे तक विश्व की सांस्कृतिक राजधानी रहने के बावजूद प्रथम विश्व युद्ध के बाद हिटलर, जर्मनी की फासिस्टवादी ताकतों की गिरफ्त का शिकार हो गया. एक कमजोर लाचार देश और प्रताड़ित कौम से सम्बद्ध होने के कारण, विश्वव्यापी लेखकीय सफलता के बावजूद उसे कौम के लाखों मासूमों की तरह दर-बदर ठोकरें खानी पडीं, मगर शुक्र है उस रूप में जान नहीं गंवानी पड़ी, हालांकि इन्हीं ठोकरों को झेलते-झेलते, उसने एक परदेशी धरती ब्राजील पर 1942 में अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली. द्रष्टव्य: वो गुज़रा जमाना, द वर्ल्ड ऑफ यस्टरडे: स्टीफन स्वाइग, स्टीफन स्वाइग की आत्मकथा के कुछ अंश, अनुवाद- ओमा शर्मा, https://www.hindisamay.com/Anuvad/Vo%20Guzara%20zamana%20-%20Stefannzwig.htm

16. वो गुज़रा जमाना, द वर्ल्ड ऑफ यस्टरडे: स्टीफन स्वाइग, स्टीफन स्वाइग की आत्मकथा के कुछ अंश, अनुवाद- ओमा शर्मा, https://www.hindisamay.com/Anuvad/Vo%20Guzara%20zamana%20-%20Stefannzwig.htm
17. डेनियलमेंडलशन, अ क्रिटिक्स मेनिफेस्टो, न्यूयॉर्कर, 28 अगस्त, 2012
18. वही
19. वही
20. वही
21. वही
22. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, द्विधाहीन मैत्री,गांधी मार्ग, संपादक-श्रीमन्नारायण एवं भवानीप्रसाद मिश्र, गाँधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली वर्ष 16, अंक 2, अप्रैल 1972 पृष्ठ-पृष्ठभाग